सबद
पीयर-रिव्यूड त्रैमासिक शोध पत्रिका
वर्ष- 1, अंक- 4 (अक्टूबर–दिसंबर 2026)
ISSN: 3139-5317 (Online), 3139-5325 (Print)

पितृसत्तात्मक समाज और किन्नर विमर्श

वन्दना सिंह [1], डॉ. रेखा श्रीवास्तव [2]
[1] शोधार्थी, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा सारण
[2] शोध निर्देशक, एसोसिएट प्रोफेसर जयप्रकाश महिला कॉलेज छपरा, सारण

शोध सार

भारत की सामाजिक संरचना परिवार, धर्म, जाति, वर्ग और आर्थिक व्यवस्था के साथ-साथ लैंगिक संबंधों का भी अध्ययन करती है। समाज में स्त्री और पुरुष के लिए निर्धारित भूमिकाएँ केवल व्यक्तिगत पसंद का परिणाम नहीं होतीं, बल्कि वे लम्बे समय से विकसित सामाजिक और सांस्कृतिक मान्यताओं से प्रभावित होती हैं। इसी व्यवस्था को समझने के लिए 'पितृसत्ता' की अवधारणा उपयोगी है। पितृसत्ता ऐसी सामाजिक संरचना को सूचित करती है जिसमें पुरुष को परिवार, संपत्ति, वंश, निर्णय और सामाजिक प्रतिष्ठा के अनेक क्षेत्रों में अपेक्षाकृत अधिक अधिकार प्राप्त होते हैं। किन्नर विमर्श इसी लैंगिक व्यवस्था के भीतर एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न उपस्थित करता है। पारंपरिक सामाजिक संरचना में स्त्री और पुरुष को दो प्रमुख लैंगिक श्रेणियों के रूप में स्थापित किया गया है। किन्नर समुदाय की पहचान इस द्वैत को चुनौती देती है और यह प्रश्न उठाती है कि क्या मनुष्य की सामाजिक पहचान को केवल स्त्री अथवा पुरुष की सीमित श्रेणियों में ही निर्धारित किया जाना चाहिए। पितृसत्तात्मक व्यवस्था केवल पुरुष और स्त्री के बीच सत्ता संबंध को प्रभावित नहीं करती, बल्कि वह लैंगिक पहचान के लिए सामाजिक मानदंड भी निर्मित करती है। जो व्यक्ति इन मानदंडों के अनुरूप दिखाई नहीं देता, उसके सामने सामाजिक स्वीकृति, पारिवारिक संबंध और सम्मान से जुड़े प्रश्न उत्पन्न हो सकते हैं।

बीज शब्द : पितृसत्ता, सामाजिक सत्ता, लैंगिक असमानता, पहचान, मानवीय गरिमा, किन्नर वर्ग।

मूल आलेख :

भारतीय समाज की संरचना को समझने के लिए केवल जाति, वर्ग, धर्म अथवा आर्थिक स्थिति का अध्ययन पर्याप्त नहीं है। सामाजिक जीवन की अनेक संस्थाओं और संबंधों के भीतर लिंग आधारित सत्ता-संबंध भी सक्रिय रहते हैं। व्यक्ति का जन्म किस जैविक पहचान के साथ हुआ, समाज उसे किस लिंग की भूमिका प्रदान करता है, उसके व्यवहार के लिए कैसी अपेक्षाएँ निर्धारित की जाती हैं और उसे परिवार तथा सार्वजनिक जीवन में कितनी स्वतंत्रता प्राप्त होती है- इन सभी प्रश्नों का संबंध सामाजिक सत्ता की संरचना से है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था में लंबे समय तक पुरुष को परिवार, संपत्ति, निर्णय और सार्वजनिक सत्ता का प्रमुख केन्द्र माना गया। स्त्री की सामाजिक भूमिका मुख्यतः पत्नी, माता, पुत्री और परिवार की देखभाल करने वाली सदस्य के रूप में निर्धारित की गई। आधुनिक काल में स्त्री-शिक्षा, स्त्री अधिकार और स्त्रीवादी आंदोलनों के प्रभाव से इस व्यवस्था पर प्रश्न उठे, लेकिन इसी विमर्श के समानान्तर एक ऐसा समुदाय भी रहा जिसकी लैंगिक पहचान पारंपरिक स्त्री-पुरुष द्वैत में आसानी से समाहित नहीं होती, वह है 'किन्नर समुदाय'।

पितृसत्तात्मक समाज और किन्नर विमर्श का संबंध विशेष रूप से इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि पितृसत्ता केवल पुरुषों की सत्ता का दूसरा नाम नहीं है, यह एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था है, जिसमें स्त्री और पुरुष के लिए निश्चित भूमिकाएँ, व्यवहार व अधिकार निर्धारित होते हैं। "स्त्री देह की बनावट और उसके कामों की वजह से उसे ऐसे सामाजिक संबंधों

में रखा गया जो सांस्कृतिक प्रक्रिया में निचले पायदान पर आते थे वनिस्पत पुरुषों के।"[1] इस व्यवस्था के बाहर स्थित या उसकी निर्धारित लैंगिक सीमाओं को चुनौती देने वाली पहचानें भी सामाजिक दबाव का सामना कर सकती हैं।

'पितृसत्ता' शब्द को सामान्यतः ऐसी सामाजिक व्यवस्था के लिए प्रयोग किया जाता है जिसमें परिवार तथा व्यापक सामाजिक संस्थाओं में पुरुष को प्राथमिक सत्ता प्राप्त होती है। पितृसत्ता में सत्ता के अनेक स्तर होते हैं यथा— परिवार में निर्णय लेने की सत्ता, संपत्ति पर अधिकार, विवाह संबंधी निर्णय, संतान और वंश की अवधारणा, स्त्री की देह पर सामाजिक नियंत्रण, श्रम का लैंगिक विभाजन, धार्मिक व सांस्कृतिक अधिकार, राजनीतिक प्रतिनिधित्व, भाषा व सामाजिक प्रतिष्ठा इत्यादि। "पितृसत्ता बहुस्तरीय है। समाज में जितनी तरह की भिन्नताएं मौजूद होती हैं—जाति, धर्म, नस्ल, वर्ग, क्षेत्रीयता; उतनी ही तरह का पितृसत्तात्मक नियंत्रण भी है।"[2] इसलिए पितृसत्ता को एक सामाजिक-सांस्कृतिक सत्ता-तंत्र के रूप में देखना अधिक उचित है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था समाज में यह धारणा विकसित करती है कि स्त्री और पुरुष की कुछ 'स्वाभाविक' भूमिकाएँ होती हैं। पुरुष से शक्ति, नेतृत्व, आर्थिक उत्तरदायित्व और निर्णय की अपेक्षा की जाती है, जबकि स्त्री से संवेदना, पालन-पोषण, घरेलू कार्य और परिवार-केंद्रित जीवन की अपेक्षा की जाती है। समस्या तब उत्पन्न होती है जब कोई व्यक्ति इन निर्धारित भूमिकाओं से बाहर दिखाई देता है। किन्नर समुदाय के संदर्भ में यह समस्या और जटिल हो जाती है क्योंकि उसकी पहचान पारंपरिक स्त्री-पुरुष द्वैत को ही प्रश्नांकित करती है। पितृसत्ता के अध्ययन को लंबे समय तक मुख्यतः स्त्री की सामाजिक स्थिति से जोड़ा जाता रहा है। स्त्री-विमर्श ने यह स्थापित किया कि स्त्री के शोषण को व्यक्तिगत समस्या न मानकर सामाजिक संरचना के संदर्भ में समझना चाहिए। इसी बिंदु से किन्नर विमर्श को भी देखने की आवश्यकता है। यदि समाज यह मानता है कि मनुष्य केवल दो निश्चित लैंगिक श्रेणियों—स्त्री और पुरुष—में विभाजित है, तो इस द्वैत से बाहर रहने वाला व्यक्ति सामाजिक संस्थाओं में अपनी जगह खोजने के लिए संघर्ष कर सकता है। "पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्थाएं हमेशा से एक स्पष्ट शक्ति संतुलन करने और सत्ता पर एकाधिकार बनाए रखने के लिए समाज के कमजोर व हाशिए के वर्ग को लगातार डोमिनेट करती रही हैं।"[3] यह संघर्ष कई स्तरों पर दिखाई दे सकता है, जैसे— पहचान का संघर्ष, पारिवारिक संघर्ष, आर्थिक संघर्ष, सांस्कृतिक संघर्ष आदि। व्यक्ति स्वयं को जिस रूप में अनुभव करता है और समाज उसे जिस रूप में देखना चाहता है, उनके बीच अंतर पैदा हो सकता है। परिवार सामाजिक स्वीकृति की पहली संस्था है। परिवार यदि व्यक्ति की पहचान को स्वीकार नहीं करता, तो सामाजिक बहिष्कार का अनुभव और गहरा हो सकता है; वहीं शिक्षा और रोजगार से दूरी व्यक्ति को आर्थिक रूप से निर्भर या असुरक्षित बना सकती है। किन्नरों के लिए तो समाज में प्रचलित स्त्री और पुरुष की दृढ़ छवियों के बीच उनकी पहचान सीमित हो सकती है।

पितृसत्ता को केवल 'पुरुष बनाम स्त्री' के द्वंद्व तक सीमित करने के बजाय लैंगिक सत्ता की व्यापक संरचना के रूप में देखना अधिक उपयोगी है। 'किन्नर' शब्द भारतीय सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ में विभिन्न अर्थ-स्तरों से जुड़ा हुआ है। आधुनिक सामाजिक संदर्भ में इसका प्रयोग प्रायः उन व्यक्तियों और समुदायों के लिए किया जाता है, जिन्हें पारंपरिक स्त्री-पुरुष लैंगिक संरचना से अलग पहचान प्राप्त है। पितृसत्तात्मक समाज और किन्नर विमर्श के बीच संबंध को समझने के लिए लैंगिक द्वैत की अवधारणा उपयोगी सिद्ध होगी। पारंपरिक सामाजिक व्यवस्था में स्त्री और पुरुष के बीच स्पष्ट विभाजन बनाया जाता है। जन्म के बाद बच्चे के लिए उसके लिंग के आधार पर नाम, वस्त्र, व्यवहार, शिक्षा, खेल, सामाजिक भूमिका और भविष्य तक निर्धारित करने की प्रक्रिया आरंभ हो जाती है। "राज्यों के उदय के साथ ऐसे नियम और कानून बनाए गए जो इस पितृसत्तात्मक व्यवस्था को आगे बढ़ाएं।"[4] यह व्यवस्था तभी सहज दिखाई देती है जब सभी व्यक्ति इस द्वैत में आसानी से समाहित हो जाएँ। लेकिन किन्नर पहचान इस व्यवस्था से कई प्रश्न पूछती है यथा, यदि व्यक्ति की पहचान केवल जन्म के समय निर्धारित जैविक विशेषताओं से तय नहीं होती है, तो समाज द्वारा बनाई

गई लैंगिक भूमिकाओं की प्रकृति क्या है? यदि पुरुषत्व और स्त्रीत्व सामाजिक व्यवहार से भी निर्मित होते हैं, तो इनके बीच की सीमाएँ कितनी स्थिर हैं? यदि किसी व्यक्ति का आत्मबोध सामाजिक अपेक्षाओं से अलग है, तो क्या समाज को उसे बदलने का अधिकार है? ये सभी प्रश्न पितृसत्तात्मक व्यवस्था की मूल धारणाओं तक पहुँचते हैं।

भारतीय समाज में परिवार व्यक्ति के समाजीकरण की पहली संस्था है। परिवार ही बच्चे को भाषा, व्यवहार, नैतिकता, परंपरा और सामाजिक भूमिकाओं से परिचित कराता है। किन्नर बच्चे के संदर्भ में परिवार की प्रतिक्रिया विशेष महत्त्व रखती है। यदि परिवार उसकी पहचान को समझने और स्वीकार करने की कोशिश करता है तो व्यक्ति को भावनात्मक सुरक्षा मिल जाती है। इसके विपरीत यदि परिवार उसे सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए समस्या मानता है, तो अस्वीकृति, छिपाव और अलगाव की स्थितियाँ उत्पन्न हो सकती हैं, विशेषकर उसके पिता के साथ। "किन्नर बच्चे के पैदा होने की खबरें, मर्दानगी के नाम पर न केवल छिपाई जाती रहीं बल्कि मरने के लिए नदी-नाले में फेंक देना, या जमीन में दफन कर देना आम बातें रहीं।"[5] इस संदर्भ में परिवार केवल निजी संस्था नहीं रह जाता, वह सामाजिक मान्यताओं का वाहक बन जाता है। यहाँ पितृसत्ता की भूमिका स्पष्ट दिखाई देती है। परिवार अक्सर 'सम्मान', 'वंश', 'परंपरा' और 'सामाजिक प्रतिष्ठा' की अवधारणाओं के माध्यम से व्यक्ति की पहचान को नियंत्रित करता है।

पितृसत्तात्मक समाज में वंश की अवधारणा भी विशेष महत्त्व रखती है। अनेक सामाजिक व्यवस्थाओं में परिवार की निरंतरता को जैविक संतान, विशेषकर पुरुष संतान से जोड़ा गया है। इस कारण शरीर और प्रजनन क्षमता को सामाजिक मूल्य से जोड़ दिया जाता है। किन्नर समुदाय के संदर्भ में यह धारणा कई प्रश्न उत्पन्न करती है। क्या किसी व्यक्ति का सामाजिक मूल्य उसकी प्रजनन क्षमता से निर्धारित होना चाहिए? क्या परिवार की निरंतरता केवल जैविक संतान के माध्यम से ही संभव है? क्या मातृत्व या पितृत्व की पारंपरिक अवधारणाओं के बाहर भी पारिवारिक संबंधों की कल्पना संभव है? ये प्रश्न केवल किन्नर समुदाय के नहीं हैं, वे परिवार और सामाजिक संबंधों की पूरी संरचना पर पुनर्विचार का अवसर देते हैं।

पितृसत्ता को समझने के लिए 'देह' की अवधारणा अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। "हर मनुष्य जन्म से ही संपूर्ण है, लेकिन जन्म के बाद लगातार उसे अधूरेपन का एहसास दिलाया जाता है।"[6] समाज व्यक्ति के शरीर को केवल जैविक इकाई के रूप में नहीं देखता। शरीर पर वस्त्र, व्यवहार, सौंदर्य, चाल-ढाल, भाषा और लैंगिक अपेक्षाएँ आरोपित की जाती हैं। स्त्री की देह पर नियंत्रण पितृसत्ता के अध्ययन का एक प्रमुख विषय रहा है। लेकिन किन्नर विमर्श इस प्रश्न को एक और आयाम देता है। यदि व्यक्ति का शरीर समाज की निर्धारित लैंगिक पहचान से मेल नहीं खाता अथवा व्यक्ति अपनी पहचान को समाज द्वारा दी गई पहचान से अलग अनुभव करता है, तो सामाजिक प्रतिक्रिया कैसी होगी? यहीं से 'देह' और 'पहचान' के बीच संबंध सामने आता है। "स्त्री अपूर्ण पुरुष है, एक ट्रांसजेंडर अपूर्ण पुरुष भी और अपूर्ण स्त्री भी। जो अपूर्ण हैं, उसकी यौनिकता और फलस्वरूप यौन आनंद पितृसत्तात्मक संरचना में मायने नहीं रखते।"[7]

समाज किसी समुदाय के लिए जिस प्रकार के शब्दों का प्रयोग करता है, उससे उसके प्रति सामाजिक दृष्टिकोण का पता चलता है। अपमानजनक संबोधन किसी व्यक्ति की सामाजिक गरिमा को प्रभावित कर सकते हैं। "पितृसत्ता मानसिक अनुकूलन तो करती ही है, उसके तरीकों में अन्य प्रकार के बल प्रयोग भी शामिल होते हैं।"[8] लम्बे समय तक किन्नर व्यक्तियों को संबोधित करने के लिए हिजड़ा, खोजा, खोजवा जैसे अनेक ऐसे शब्द प्रचलित रहे जिनमें उपहास, तिरस्कार या दूरी का भाव था। लेकिन आधुनिक किन्नर विमर्श ने ऐसी भाषा पर प्रश्न भी उठाया।

शिक्षा व सामाजिक बहिष्कार के संदर्भ में यदि देखा जाए तो शिक्षा व्यक्ति के सामाजिक और आर्थिक विकास का महत्त्वपूर्ण साधन है। किन्तु यदि किसी समुदाय के बच्चे को विद्यालय में उपहास, भेदभाव अथवा असुरक्षा का सामना

करना पड़े, तो शिक्षा की प्रक्रिया बाधित हो सकती है। किन्नर समुदाय के संदर्भ में शिक्षा की समस्या को केवल विद्यालय में प्रवेश के प्रश्न तक सीमित नहीं किया जा सकता। इसके कई आयाम हैं, जिनमें परिवार का समर्थन, विद्यालय का वातावरण, सहपाठियों का व्यवहार, शिक्षकों की संवेदनशीलता, पाठ्यक्रम में लैंगिक विविधता का प्रतिनिधित्व, विद्यालयी अभिलेखों और पहचान संबंधी प्रक्रियाएँ, उच्च शिक्षा में अवसर, शिक्षा के बाद रोजगार इत्यादि हैं।

किन्नर विमर्श पितृसत्ता की आलोचना करते हुए केवल यह नहीं कहता कि किन्नरों के साथ भेदभाव समाप्त होना चाहिए; यह उससे अधिक व्यापक प्रश्न उठाता है, जैसे कि समाज मनुष्य की पहचान निर्धारित करने के लिए किन मानकों का उपयोग करता है? यदि समाज केवल दो लैंगिक श्रेणियों को सामान्य मानता है, तो उससे अलग पहचान वाले व्यक्ति को 'असामान्य' कहने की प्रक्रिया शुरू हो सकती है। "ट्रांसजेंडर अस्मिताएँ भाषा और संरचना के बीच, बल्कि उनके अभाव में फँसी हुई अस्मिताएं हैं, न कि औरत-मर्द के बीच।"[9] इसलिए किन्नर विमर्श 'सामान्य' और 'असामान्य' की सामाजिक अवधारणाओं की भी आलोचना करता है। यहाँ विमर्श का एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त सामने आता है समानता का अर्थ सभी व्यक्तियों को एक जैसा बनाना नहीं, बल्कि उनकी विविध पहचान के साथ समान मानवीय गरिमा स्वीकार करना है।

किन्नर विमर्श और स्त्री विमर्श के बीच कई समानताएँ दिखाई देती हैं। दोनों विमर्श सामाजिक सत्ता द्वारा निर्धारित भूमिकाओं की आलोचना करते हैं और व्यक्ति की अस्मिता तथा गरिमा को महत्त्व देते हैं। "हमारी पुरुष पहचान एक दुर्भाग्यपूर्ण घटना है। हम स्त्री होना चाहते हैं – हम स्त्री हैं। हम स्त्री जैसा महसूस करते हैं।"[10] स्त्री विमर्श का ऐतिहासिक केन्द्र स्त्रियों के अनुभव, अधिकार और पितृसत्तात्मक शोषण की आलोचना रहा है। किन्नर विमर्श का केन्द्र लैंगिक पहचान की विविधता, सामाजिक स्वीकृति और किन्नर समुदाय के विशिष्ट अनुभव हैं। किन्नर समुदाय को साहित्य और समाज में केवल पीड़ित, उपेक्षित या हास्य का पात्र बनाकर प्रस्तुत करना भी समस्या पैदा करता है। "अब मेरी आँखों से सिर्फ दर्द के आँसू निकल रहे थे और वह हैवान मेरे शरीर से मजे लेता रहा।"[11]

विमर्श का उद्देश्य उपरोक्त की तरह केवल पीड़ा को दिखाना नहीं होना चाहिए, बल्कि इसके साथ यह भी देखना आवश्यक है कि किन्नर व्यक्ति निर्णय लेने वाला नागरिक है, परिवार का सदस्य है, शिक्षित व्यक्ति हो सकता है, कलाकार हो सकता है, लेखक हो सकता है, राजनीतिक व सामाजिक कार्यकर्ता हो सकता है, आर्थिक गतिविधियों में भाग ले सकता है और अपने जीवन का स्वयं प्रतिनिधित्व कर सकता है। किसी समुदाय के बारे में बाहरी व्यक्ति द्वारा लिखा गया साहित्य उस समुदाय की एक छवि प्रस्तुत करता है, लेकिन जब समुदाय के सदस्य स्वयं अपनी जीवन-कथा लिखते हैं, तब अनुभव का एक अलग आयाम सामने आता है। "मुझे विश्वास हो गया कि यह दुनिया पागल मर्दों से भरी हुई है, जिसके बीच मुझे अपनी देह, अपने दर्द और अपने दुख के साथ रहना है।"[12] अस्मिता केवल किसी व्यक्ति द्वारा स्वयं को दिए गए नाम का प्रश्न नहीं है। वह सामाजिक स्वीकार्यता से भी जुड़ी है। किसी व्यक्ति की अस्मिता तभी सामाजिक रूप से मजबूत होती है जब उसे स्वयं को परिभाषित करने का अवसर मिले, परिवार में सम्मान मिले, शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार हो, रोजगार आदि उपलब्ध हों, कानूनी पहचान प्राप्त हो, सामाजिक जीवन में भागीदारी सुनिश्चित हो तथा हिंसा एवं भेदभाव से सुरक्षा मिले।

निष्कर्ष

पितृसत्तात्मक समाज और किन्नर विमर्श का संबंध गहरा और बहुस्तरीय है। पितृसत्ता को केवल पुरुष-प्रधान परिवार व्यवस्था के रूप में देखने के बजाए यदि उसे व्यापक लैंगिक सत्ता-संरचना के रूप में समझा जाए, तो किन्नर विमर्श उसके अध्ययन का महत्त्वपूर्ण क्षेत्र बन जाता है। किन्नर समुदाय की समस्याएँ केवल सामाजिक पूर्वाग्रह का परिणाम

नहीं हैं। वे परिवार, शिक्षा, अर्थव्यवस्था, भाषा, संस्कृति, धर्म, कानून और सामाजिक मान्यताओं जैसी अनेक संस्थाओं से जुड़ी हैं। इस दृष्टि से किन्नर विमर्श पितृसत्ता के सामने केवल अधिकारों की माँग नहीं रखता, बल्कि समाज की उन धारणाओं पर भी प्रश्न करता है जिनके आधार पर सामान्य और असामान्य, स्त्री और पुरुष, स्वीकार्य और अस्वीकार्य की सीमाएँ निर्धारित की जाती हैं। किन्नर विमर्श को पितृसत्ता के संदर्भ में पढ़ना वास्तव में मानव पहचान, सामाजिक सत्ता और गरिमा के संबंध को समझने तथा लैंगिक विविधता के साथ समानता, सामाजिक स्वीकृति और मानवीय गरिमा पर आधारित समाज की आवश्यकता को रेखांकित करने का प्रयास है।

संदर्भ सूची-

1. क्रिएशन ऑफ़ पैट्रियार्की, गर्डा लर्नर, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1986, पृ० सं० - 25
2. पितृसत्ता, यौनिकता और समलैंगिकता, सेतु प्रकाशन, सुजाता, प्रथम संस्करण - 2025, पृ० सं० - 50.
3. हर्षिता द्विवेदी, किन्नर विमर्श: मिथकों से अधिकारों तक, संपादक - अपनी माटी, अंक - 32, 6 जुलाई 2020.
4. क्रिएशन ऑफ़ पैट्रियार्की, गर्डा लर्नर, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस-1986, पृ० सं० - 216
5. हर्शिता द्विवेदी, किन्नर विमर्श: मिथकों से अधिकारों तक, अपनी माटी, अंक - 32, जुलाई 2020.
6. पितृसत्ता, यौनिकता और समलैंगिकता, सुजाता, सेतु प्रकाशन, प्रथम संस्करण - 2025, पृ० सं० - 97
7. वही, पृष्ठ सं० - 97
8. देखें वही, पृ० सं० - 42
9. देखें वही, पृ० सं - 129
10. आई एम विद्या, जर्नी ऑफ अ ट्रांसजेंडर, विद्या रूपा-2013, पृ० सं०-99
11. चित्रा मुद्गल : पोस्ट बॉक्स नं० - 203 नाला सोपारा, 2017, सामयिक प्रकाशन, पृ० सं० - 86
12. आई एम विद्या, जर्नी ऑफ अ ट्रांसजेंडर, विद्या, रूपा, 2013, पृ० सं० - 92, 93